International Journal of Applied Research 2019; 5(1): 506-509

International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(1): 506-509
www.allresearchjournal.com
Received: 22-11-2018
Accepted: 26-12-2018

डॉ. देवेन्द्र कुमार आजाद
इतिहास विभाग, एल. सी. एस. कॉलेज, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. देवेन्द्र कुमार आजाद
इतिहास विभाग, एल. सी. एस. कॉलेज, दरभंगा, बिहार, भारत

मिथिला में स्वतंत्रता आन्दोलन तथा पत्रकारिताः एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. देवेन्द्र कुमार आजाद

सारांश

स्वतंत्रता आन्दोलन में मिथिलावासियों का अथक योगदान रहा है। स्वतंत्रता आन्दोलन, समाचार पत्र तथा राष्ट्रवाद के बीच स्पष्ट सम्बन्ध मौजूद है। वस्तुतः 1857 के विद्रोह के असफल हो जाने के बाद शिक्षित बुद्धिजीवियों में एक बेचैनी पैदा हो गयी। फलतः विभिन्न स्तरों पर स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए व्यापक पैमाने पर विचार तथा संगठन के जरिए स्वतंत्रता आन्दोलन की चेतना को नया आधार प्रदान किया गया। देश के कोने–कोने में उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के खिलाफ असंतोष की भावना परिव्याप्त थी। फलतः पुणर्जागरण आन्दोलन के चिन्तकों तथा समाज सुधार आन्दोलन से जुड़ें कार्यकर्त्ताओं ने अपने–अपने स्तरों पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तौर पर राष्ट्रवाद के विकास के लिए योगदान किया। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना मूलतः अभिजन वर्ग के द्वारा किया गया था। कांग्रेस के संगठन तथा उद्देश्य में उतार–चढ़ाव का दौर चलता रहा तथा अंततः यह स्वतंत्रता आन्दोलन का केन्द्रीय संगठन सिद्ध हुआ। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान विभिन्न चिन्तकों तथा नेताओं ने 1885 से 1947 के कालखण्ड में समाचार पत्रों का प्रकाशन किया। साथ ही इन नेताओं एवं चिन्तकों ने समय–समय पर समाचार पत्रों में समता, स्वतंत्रता, न्याय तथा भाईचारे के सम्बन्ध में लेखों एवं वैचारिक निबन्धों को प्रकाशन किया। इस प्रकार स्वतंत्रता आन्दोलन में समाचार पत्रों की भूमिका महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई।

प्रस्तावना

स्वतंत्रता आन्दोलन तथा पत्रकारिता के बीच गहरा सम्बन्ध है। मिथिला भी स्वतंत्रता आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी स्वीकार किया कि स्वतंत्रता आन्दोलन में मिथिलावासियों का अथक योगदान रहा है। महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह का स्वतंत्रता आन्दोलन में ऐतिहासिक योगदान रहा है। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के लिए जमीन का प्रबन्ध किया। वे कांग्रेस के संस्थापक सदस्य थे। परन्तु स्वतंत्रता आन्दोलन के क्रम में पत्रकारिता के क्षेत्र में मिथिला में शिथिलता का अनुभव किया जा सकता है। इसका कारण है कि मिथिला में बहुत दिनों तक संस्कृत, कर्मकाण्ड तथा सामंतवाद का प्रभाव रहा। औद्योगिकीकरण के अभाव में मिथिला में प्रेस तथा मुद्रण कला का विशेष विकास नहीं हुआ। इस इलाके में आधुनिक शिक्षा का विकास भी विलम्ब से हुआ है। 1909 से 2009 के कालखण्ड में मिथिला की पत्रकारिता का मूल लक्ष्य साहित्य एवं संस्कृति के विकास पर केन्द्रित दिखाई पड़ता है। अतः स्वतंत्रता आन्दोलन में मिथिला के पत्रकारों में प्रवासी मैथिली के रूप में योगदान किया। परन्तु इस क्षेत्र की पत्रिकाओं में स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रति एक निरपेक्ष प्रवृत्ति का अनुभव किया जा सकता है। देश के नरेशों में आपसी फूट, राजनीतिक अदूरदर्शिता, राष्ट्रीयता के भाव की कमी, जातिगत विद्वेष एवं तज्जनित संकीर्णता, तथा व्यक्तिगत स्वार्थ की प्रधानता के कारण भारतवर्ष को विदेशियों की परतंत्रता की कठिन बेड़ी के बंधन में चिरकाल तक जकड़ा रहना पड़ा था, पर इतिहास इसका साक्ष्य देता है कि उस अवधि में भी वह उस हीनावस्था से मुक्ति पाने के हेतु सदैव छटपटाता रहा है और समय–समय पर उसके लिए परिस्थिति के अनुकूल सयत्न भी हुआ। अंग्रेजों के भारत में शासन के आरंभ में एक शती पश्चात् देश में स्वतंत्रता की भावना अति प्रबल हो उठी और उसकी लहर दशो दिशाओं में फैल गयी।

बंगाल के पलासी के मैदान में 23 जून, 1757 ई0 के दिन मीरजाफर के व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण भारत के भाग्य ने पलटा खाया, और ईस्ट इण्डिया कम्पनी नामक युरोप के विदेशी व्यापारी–संघ की विजय भारतीय राजनीति पर हो गयी। किन्तु अल्यल्प काल के अभ्यन्तर ही मीरजाफर के जामाता मीरकासिम ने सर्वप्रथम 1762–63 ई0 में उदीयमान ब्रिटिश प्रभसत्ता का विरोध किया। उसके पश्चात् मीरकासिम, अवध के नवाज शुजाउद्दौला, तथा दिल्ली के बादशाह शाह आलम द्वितीय की संघ सेना ने 23 अक्टूबर, 1764 ई0 को बक्सर के निकट के संयुग में अंग्रेजी वाहिनी का सामना किया। किन्तु देश के दुर्भाग्य से अंग्रेजों को कुछ ऐसी अनुकूल परिस्थिति मिल गयी,

जिसके कारण विजयश्री ने हिन्दुस्तानियों से रूष्ट होकर विदेशी अंग्रेजों को गले लगाया। पलासी के समर ने अंग्रेजों को बंगाल तथा बिहार पर शासन करने की सुविधा प्रकारान्तर से दी थी, किन्तु बक्सर के संग्राम के पश्चात् वे वहाँ के असली शासक बन गए और नवाब मीरजाफर उनके हाथ का खिलौना बना रहा।

उपर्युक्त घटना के पश्चात् की पूरी शताब्दी के अन्दर अंग्रेजों की राज्य–विस्तार नीति तथा शासन–पद्धति से देश में अनेक प्रकार की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उथल–पुथल हुई। अनेक कारणों से उद्धवर्वाङ्कित परिस्थितियों में देशवासियों के हृदय में अंग्रेजी शासन के प्रति असंतोष एवं अविश्वास उत्पन्न होता गया, जिसका परिणाम समय–समय पर जहाँ–तहाँ के उनके विरूद्ध खूल्लम–खुल्ला विद्रोहाग्नि का भड़कना था, जिसका संकेत पूर्व के परिच्छेदों में प्रसंगवश किया जा चुका है। इस प्रकार का छिटफुट विद्रोह भारत के भिन्न–भिन्न भागों में यदा–कदा होता रहा, और बिहार प्रदेश भी उससे मुक्त न रह सका। मिथिला बिहार का एक अंश था ही। उसके हृदय में भी स्वतंत्रता की आग लहर रही थी। अतः देश को स्वाधीन करने के हेतु जितने आन्दोलन किए गए, उन सभी में उसका सहयोग भरपूर रहा।

काशी नगरी बिहार प्रदेश की सीमा के अतिसन्निकट है। वहाँ के महाराजा चेत सिंह का अंग्रेजों ने बलपूर्वक दमन किया था। उसे राज्य छोड़कर प्राण–रक्षा के हेतु गंगा मार्ग का वहाँ स्वागत किया और उनके पवित्र ध्येय की पूर्ति के लिए स्वयं सन्नद्ध एवं कटिबद्ध हुए। देखते–देखते शतशः देश–प्रेम–मदमत्त विक्रमी योद्धा अपनी मातृभूमि के उद्धार करने हेतु दृढ़–प्रतिज्ञ एवं बद्धपरिकर होकर बाबू कूँअर सिंह के चारों ओर उपस्थिति हुए, और उन्होंने उनकी आज्ञा एवं निर्देश पर मर मिटने का संकल्प लेकर उनको उस पावन आन्दोलन का नेता स्वीकार किया। बाबू कुँवर सिंह ने अपने जगदीशपुर के दुर्ग में शस्त्रास्त्र एवं बारूद आदि प्रस्तुत करने के हेतु एक कारखाने की स्थापना की तथा 20,000 सैनिकों को छः महीने तक भोजन देने के लिए सामग्रियाँ एकत्रित कर ली। उत्तर एवं दक्षिण बिहार की जनता की सद्भावना, सहानुभूति एवं प्रेम उनको प्राप्त हुआ। इस सशस्त्र क्रांति का स्वागत बिहार के अधिकांश अधिवासियों ने हृदय से किया और आजादी के दीवाने उस क्रांति के सिपाहियों को समर–काल में खिलाने–पिलाने तथा उनके स्वागत करने की तैयारियाँ जगदीशपुर से दूर गंगा के दूसरे पार दरभंगा, मुजफ्फरपुर आदि जिलों में ग्रामीण जनता प्रच्छन्न रूप से करने लग गयी, जिसका आँखों देखा वर्णन करने वाले अनेक वृद्ध 20वीं शताब्दी के प्रथम चरण के अन्त तक तथा उसके बाद भी विद्यमान थे।

बाबू कुँवर सिंह के प्रधान सहचरों में उनके भाई अमर सिंह एवं रीतानारायण सिंह, उनके भाँजे निशान सिंह तथा जय कृष्ण सिंह, शाहबाद के चार जमींदार नरहन सिंह, जूहन सिंह, ठाकुर दयाल सिंह तथा विश्वेश्वर सिंह, एक मुसलमान वकील एंव एक और नवयुवक मुसलमान थे। बाबू कुँवर सिंह ने सोमवार, 27 जुलाई, 1859 ई0 को दानापुर के सैनिकों की टोली एवं अपने दल के साथ अग्रसर होकर आरा के अंग्रेजों को घेर लिया। रेलवे कम्पनी के जिला अभियंता मि0 व्यायल ने किलेबन्दी के साथ एक–दो मंजिला मकान बनवाया था। आरा के दण्डाधिकारी मि0 एच0 सी0 बेक के साथ वहाँ के तथा वहाँ के आस–पास के सभी यूरोपियन अधिवासियों ने 26 जुलाई की संध्या में उस भवन में जाकर शरण ली थी। उन अंग्रेजों के उद्धार करने के हेतु दानापुर से लगभग 500 अंग्रेजों एवं सिख सैनिकों की टोली कैप्टन डनवार को नायकत्व में भेजी गयी। परन्तु अंग्रेजी सेना की आरा के उस युद्ध में करारी हार हुई। सेना के लगभग सभी सिपाही सेना–नायक के साथ समरांगण में धराशायी हुए। उनमें से बहुत कम जीवित बचे, जिन्होंने दानापुर जाकर उस युद्ध का दुखद परिणाम अपने सेनानायक को सुनाया। जेनरल ल्वायड ने उसी दिन तार द्वारा प्रधान सेनाध्यक्ष को दुःख के साथ सूचित किया कि आरा पर आक्रमण का परिणाम स्वर्गीय सेनानायक कैप्टन डनवार की कुव्यवस्था के कारण बहुत ही दुःखद हुआ। कैप्टन डनवार के साथ कैप्टन आर0 पी0 हैरिसन ने 31 जुलाई 1859 ई0 को ऐडजुटैण्ड जेनरल के पास अपना प्रतिवेदन भेजा था। उसमें उसने अंकित किया था कि उक्त युद्ध में विद्रोहियों की हानि अत्यल्प हुई, क्योंकि रात अंधेरी थी और सिपाही इतने थक गए थे कि उनके लिए बन्दुक चलाना कठिन था। भारतीय हमलोगों के विरोधी बन गए हैं। मेजर जनरल ल्वायड ने पुनः अगस्त, 1859 ई0 को कमाण्डर–इन–चीफ को सूचित किया कि– ''बाबू कुँवर सिंह एवं आरा के विद्रोहियों के साथ सफलतापूर्वक समर करने के हेतु सेना वहाँ अपर्याप्त है। बाबू कुँवर सिंह ने पर्याप्त सेना एकत्र कर ली है। कहा जाता है कि पटना पर आक्रमण करने की बात वह सोच रहा है। किन्तु उसका असली मन्तव्य क्या है, यहाँ कहा नहीं जा सकता है। सोन नदी में जितनी नावें हैं, वे सभी उनके अधिकार में है।

मेजर आयर अपने सैनिकों के साथ इलाहाबाद जा रहा था। आरा के अंग्रेजों की दुर्दशा का समाचार सुनकर वह उस ओर मुड़ा। बाबू कुँवर सिंह की सेना के साथ 3 अगस्त की उसकी मुठभेड़ बीबीगंज में हुई। उसमें आयर विजयी हुआ। इतने में उसके पास और कुमुक पहुँच गयी। उसने उसकी सहायता से जगदीशपुर पर आक्रमण कर उसपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। वहाँ के युद्ध–सामग्रियों के भण्डारों एवं भवनों को उसके निर्दयता पूर्वक विनष्ट किया, तथा देव–मंदिरों को भी अक्षत नहीं रहने दिया। किन्तु अंग्रेजों की उस विजय तथा बर्बरतापूर्ण कार्यवाही से बाबू कुँवर सिंह की रणोन्मत्तता में कमी नहीं आयी। उन्होंने अपने कार्य–क्षेत्र का विस्तार बिहार से बाहर तक भी किया, और अन्य स्थानों में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के विरुद्ध युद्ध में रत देशभक्त नेताओं से सम्पर्क स्थापित कर लिया। शाहाबाद जिले के अतिरिक्त बिहार प्रदेश के छोटानागपुर, पटना, भागलपुर एवं तिरहुत में भी राष्ट्रीय जागृति हो चुकी थी और उन स्थानों में विद्रोहनल सुलग रहा था। इन सभी स्थानों के नेताओं के साथ बाबू कुँवर सिंह का पत्राचार होता था, और सभी जगहों की सशस्त्र क्रांति का सूत्र–संचालन एक राय एवं एक विचार से हो रहा था।

बाबू कुँवर सिंह ने बिहार से बाहर रीवा, ग्वालियर, लखनऊ, आजमगढ़ आदि स्थानों के मुख्य–मुख्य नेताओं एवं विद्रोही सेनाओं से मिलकर उन स्थानों में अंग्रेजों के वियद्ध स्थान–स्थान पर रण करना आरंभ किया। सभी स्थानों में स्थानीय जनता की सहानुभूति, प्रेम एवं सहायता उनको प्राप्त थी। स्वतंत्रता के सेनानियों के इस प्रकार के सहयोग एवं समन्वय देखकर एक समकालीन अंग्रेज पदाधिकारी ने 1859 ई0 में लिखा था कि– ''आपत्ति आखिर आयी। आरंभ में वह सैनिक–विद्रोह मात्र था, पर अति शीघ्रता के साथ उसके रूप में परिवर्तन हुआ और राष्ट्रीय क्रान्ति का आकार उसने धारण कर लिया। बिहार प्रदेश, बनारस, आजमगढ़, गोरखपुर, मेरठ, आगरा, गंगा एवं यमुना के बीच की भूमि आदि के सभी राजपूत गांवों के अधिवासियों ने हमलोगों के शासन से अपने को मुक्त कर हमारे विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया है।''

बाबू कुँवर सिंह रीवा, बांदा, कानपुर आदि स्थानों में अपनी सेना के साथ गए और वहाँ के स्वतंत्रता–संग्रामों में अपने सक्रिय भाग लिया। उसके पश्चात् वे लखनऊ पहुँचे। वहाँ के शाह ने अपने शाही दरबार में बाबू कुँवर सिंह का ससम्मान स्वागत किया तथा एक बहुमूल्य खिलअत भी प्रदान की। साथ ही उपहार में उनको वहाँ आजमगढ़ जिले के जमींदारी अधिकार का फरमान तथा 12,000 रू0 नकद भी प्राप्त हुए। आजमगढ़ से 25 मील की दूरी पर अतरोलिया में अन्य साथियों से दिनांक 29 मार्च, 1858 ई0 की बाबू कुँवर सिंह अपने दल से जा मिले। यह समाचार प्राप्त कर केवल कई दिनों के अन्दर ही कर्नल मिलमैन अपनी विशाल

वाहिनी के साथ उनके विरुद्ध टूट पड़ा, पर समर में उसे हार खानी पड़ी। बाबू कुँवर सिंह अपने दल–बल के साथ आजमगढ़ में शिविरस्थ होकर डटे रहे। वहाँ से उनको मार भगाने के हेतु कर्नल डेम्स ने अपनी सारी शक्ति लगा कर आजमगढ़ पर चढ़ाई की, पर उसकी भी वहीं गति हुई, जो कर्नल मिलमैन की हुई थी। आजमढ़ पर बाबू कुँवर सिंह का अधिकार बना ही रहा। यह समाचार पाकर गवर्नर– जनरल लॉर्ड कैनिंग घबड़ा गया। उसने लॉर्ड मर्क तथा सर एडवर्ड लुगर्ड को आजमगढ़ का उद्धार भाव सौंपा। उसकी समझ में कुँवर सिंह के सामारिक–कौशल को समझने वाला उन दोनों के अतिरिक्त अंग्रेजी सेनानायकों में कोई अन्य न था। बाबू कुँवर सिंह युद्ध कलाविदों में धुरंधर थे। यह समाचार ज्ञात कर उन्होंने अपनी सारी सेना को आजमगढ़ में प्रचछन्न रूप से शिविरस्थ रहने दिया। उनमें से केवल एक छोटी टुकड़ी को साथ लेकर वे गाजीपुर की ओर चल पड़े। अतः वहाँ का उनका आक्रमण उस काल स्थगित हो गया। बाबू कुँवर सिंह का ध्येय गंगा पार कर अपनी राजधानी जगदीशपुर पर पुनः अधिकार कर लेने का था। गाजीपुर जिले के जमींदारों एवं जन–समुदाय ने उनकी सस्नेह अभ्यर्थना कर सभी प्रकार से सहायता की तथा सेना के लिए रसद आदि का भी प्रबन्ध किया।

ब्रिगेडियर डॉग्लस के अधीन अंग्रेजी सेना बाबू कुँवर सिंह के प्रतिरोध में अग्रसर हुई। दिनांक 21 अप्रैल, 1859 ई0 को उसने स्वतंत्रता–संग्राम के वृद्ध पर वीर सेनानी का सामना किया। बाबू कुँवर सिंह ने बड़ी वीरता एवं कुशलता से युद्ध कर अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए। अंग्रेजों ने गंगा नदी की नावों को इसलिए जलमग्न करवा दिया था कि जिससे बाबू कुँवर सिंह की सेना गंगा पार जगदीशपुर की ओर बढ़ने में अक्षम रहे। ब्रिगेडियर डॉग्लस को इसमें सफलता न मिल सकी। आखिर बाबू कुँवर सिंह अंग्रेजों के प्रतिरोध का सफलतापूर्वक अतिक्रमण कर गंगा के किनारे अपने दल–बल के साथ पहुँचे, और उसके दक्षिण तट के ग्रामों के अधिवासियों की सहायता से नदी पार कर गए। कहा जाता है कि इस समर में उनको कई घाव लग चुके थे। आहत अवस्था में भी वे अपनी सेना के सभी जवानों को नौकारूढ़ करा कर पीछे स्वयं पार कर जाने हेतु नाव पर चढ़े। अंग्रेजों को पता चल गया कि बाबू कुँवर सिंह रातों–रात ससैन्य शिवपुर घाट पर पहुंच चुके हैं, और वहाँ उनके पार उतरने का भी प्रबंध स्थानीय ग्रामीणों ने कर दिया हैं इस पर अंग्रेजी सेना ने उनका पीछा किया। पर तब तक बाबू कुँवर सिंह की नाव गंगा के आगे बढ़ चुकी थी। अंग्रेजी सेना की ओर से गोलियाँ चलने लगी। बाबू कुँवर सिंह की बांह में एक गोली लगी, जिससे हड्डी टूट गयी। कहा जाता है कि बाबू साहब ने जब अपनी उस बाहू को बेकार होता देखा तो अपनी तलवार से वीरतापूर्वक उसे काट कर गंगा को समर्पित कर दिया। दृढ़–प्रतिज्ञा वीरव्रती के मार्ग को उसके आहत होने की अवस्था में भी कोई रोक नहीं सका और वे 23 अप्रैल को जगदीशपुर पहुंच गए। अंग्रेजों से युद्ध कर उन्हें परास्त करना तथा मृत्यु के पूर्व अपने जन्म–ग्राम को विदेशी दस्युओं से स्वतंत्र कर लेना उनका अंतिम लक्ष्य था। अंग्रेजों ने उनसे लड़ने के हेतु कैप्टन ली ग्रेण्ड की अधीनता में अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित, सबल एवं परीक्षित सैनिकों को भेजा। आजादी के दीवानों से उसकी मुठभेड़ उसी दिन 23 अप्रैल के दिन हुई। भयंकर समर के पश्चात् विजयश्री ने स्वतंत्रता देवी के उपासक वीरों के गले में जयमाला पहनायी। अंग्रेजों का उस युद्ध के पराभव हुआ। गुप्तचरों ने जो गोपनीय प्रतिवेदन अंग्रेज सरकार के पास भेजा, उसके अनुसार 250 से 300 तक सिपाही बाबू कुँवर सिंह के विरूद्ध लड़ने के लिए भेजे गए थे, जिनमें से केवल 25 से 35 तक यूरोपियन तथा 30 से 35 तक सिक्ख सैनिक और 9 उनके पदाधिकारी आरा में लौट कर आते देखे गए। शेष समरांगण में धराशायी हुए। विजेताओं को उस युद्ध में अनेक बन्दुके भी हाथी लगी। जगदीशपुर के भग्न–महल पर बाबू कुँवर सिंह का विजय–पताका पुनः लहरा उठी। अंग्रेजों से मिले देश–द्रोहियों का दमन किया गया था। वहाँ फिर से हिन्दुस्तानी राज–सत्ता स्थापित कर ली गयी थी। किन्तु अस्सी वर्षीय बाबू कुँवर सिंह के शरीर से रक्त निकल चुका था। शनैः शनैः उनका शरीर शिथिल होने लगा और ली ग्रैण्ड पर विजय के तीन दिनों के पश्चात् उस स्वतंत्रता के पुजारी का शरीरान्त हो गया।

बाबू कुँवर सिंह ने जगदीशपुर को अंग्रेजों से छीन कर पुनः उस पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। यह समाचार विद्युत के समान चारों ओर फैल गया। लोगों में उत्साह बढ़ा। अंग्रेजी–शासन को निर्मूल करने के प्रयत्न में सभी स्थानों में स्वदेशी–प्रेमी युवक पिल पड़ें। उपर लिखा जा चुका है कि बाबू कुँवर सिंह का पत्राचार देश के उन सभी नेताओं के साथ होता था, जो अपने–अपने प्रदेश एवं अंचल में स्वतंत्रता समर का संचालन कर रहे थे, और शाहबगाद, पटना, भागलपुर, तिरहुत तथा छोटा नागपुर में जो आन्दोलन चल रहा था अथवा सशस्त्र क्रान्ति मच रही थी, उसका सम्बन्ध आपस में एक दूसरे से था।

बाबू कुँवर सिंह की मृत्यु के पश्चात् उस युद्ध का नेतृत्व उनके अनुज, बाबू अमर सिंह ने ग्रहण किया। उनके सहायक हरिकिशन सिंह, जुघन सिंह, अली करीम आदि ने अपने कार्य क्षेत्र का विस्तार किया, और वे सम्पूर्ण बिहार में अपना काम करने लगा। जनता उनके कार्य को पवित्र समझती थी। अतः उन्हें जन–सहयोग सर्वत्र एवं सब समय प्राप्त होता रहता था। अंग्रेजों के लिए परिस्थिति का संभालना कठिन हो गया। वे कोठियों में एकत्रित होने लगे, जो नदी के किनारे थी तथा जहाँ से यातायात में सुविधा थी। इस प्रकार की अंग्रेजों की कोठियाँ मिथिला में ढ़ोली, बिरौली, जितवारपुर, दौलतपुर आदि में थी, जहाँ से आपत्ति–काल में आवश्यकता पड़ने पर वे सब जल–मार्ग से कलकत्ता की ओर पलायन कर सकते थे।

मिथिला के गाँव–गाँव में लोग स्वतंत्रता के पुजारी सैनिकों की बाट जोहने लगे। उनके स्वागत की तैयारियाँ सभी गाँवों में प्रच्छन्न रूप से पूरी हो चुकी थी। स्थान–स्थान पर उनके लिए रसद का इंतजाम ग्रामीण जनता ने कर रखा था। मुजफ्फरपुर जिले के सकरा थानान्तर्गत दुबहा ग्राम के एक 80 वर्षीय वृद्ध राजपूत रामदौन सिंह ने परिस्थिति का आँखो देखा वर्णन 1923 ई0 में इन पंक्तियों के लेखक के सामने किया था। उस वृद्ध की अवस्था 1858–59 ई0 में 13–14 वर्ष की थी। उसके गांव में बाबू कुँवर सिंह के फौजी सिपाहियों के खिलाने–पिलाने के हेतु चावल, आंटा, खसी, घी, चबेना, तम्बाकू आदि एकत्रित कर एक स्थान में रख लिया था, जिससे उनके इस ओर आने पर इन वस्तुओं के एकत्रित करने में व्यर्थ समय नष्ट न करना पड़े। ऐसा प्रबंध अपने–अपने ग्रामों में लगभग सभी ग्राम वालों ने कर रखा था। बाबू कुँवर सिंह की मृत्यु का समाचार भी उन लोगों को प्राप्त हुआ, पर उससे वे सब हताश नहीं हुए। रामदौन सिंह का कहना था कि वह कृषक का पुत्र था और उस काल अपने साथियों के साथ भैंस चराने मैदान में जाया करता था।

जगदीशपुर में अंग्रेजी शासन के समानान्तर शासन बाबू अमर सिंह का चल रहा था। युद्ध को चालू रखने के हेतु वे अदम्य उत्साह एवं व्यवसाय का प्रदर्शन कर सदैव एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते और अथक परिश्रम करते रहे। जब नाना साहब भारत छोड़कर नेपाल चले गए जो उनकी सेना के नेतृत्व करने के विचार से तराई में गए। किन्तु वहाँ पर 1859 ई0 के दिसम्बर महीने में अंग्रेजों के समर्थकों एवं सहायकों ने उन्हें पकड़वा दिया। वहाँ से लाकर अंग्रेजों ने उन्हें गोरखपुर जेल में रखा। उनको वहाँ से जनता को आतंकित करने का विचार अंग्रेजों का था। परन्तु ईश्वर को उनका वह अपमान स्वीकार न था। उन्हें गोरखपुर जेल में पेचिश की बीमारी हुई, उनका देहांत 5 फरवरी, 1860 ई0 को हो गया। उनकी मृत्यु के पश्चात् दक्षिण बिहार के साथ ही उत्तर बिहार में भी उस सशस्त्र आंदोलन की गति धीमी पड़ गयी। अंग्रेजी सेना घूम–घूम कर निरीह भारतीय जनता को अपनी मातृभूमि को विदेशियों के चंगुल से मुक्त करने की चेष्टा

करने के अपराध का अपराधी घोषित कर उन्हें दण्ड देने तथा उसके द्वारा लोगों को आतंकित करने लगी, आतंकित करने लगी, जिससे भविष्य में कोई ऐसा कार्य करने का दु:साहस नहीं कर सके। बड़े–बड़े जमींदारों के नाम जिलाधीशों ने आज्ञापत्र भेजकर अंग्रेजी सैनिकों के भोजनादि की व्यवस्था करने का आदेश देना आरंभ किया। उनको भी विवश होकर उनकी उस प्रकार की आज्ञा का पालन करना पड़ता था। कुछ जमींदारों के आवास पर जाकर उन्हें उस संदेह में बन्दी बनाया गया कि उन्होंने गुप्त रूप से बाबू कुँवर सिंह के स्वतंत्रता संग्राम में योगदान दिया था। इस प्रकार मिथिला में तथा अन्यत्र उस स्वतंत्रता–आन्दोलन को सिपाहियों का अवैध विद्रोह बताकर विदेशियों ने उस काल दबा देने में सफलता प्राप्त की, पर क्रांति की वह आग बुझी नहीं। अन्दर ही अन्दर रवह सुलगती रही, जिसका विस्फोट भिन्न–भिन्न समय में भिन्न–भिन्न रूप में तब तक होता रहा, जब तक 1947 ई0 में भारतवर्ष ने पूर्ण रूप से स्वतंत्र होकर सार्वभौम सत्ता प्राप्त नहीं कर ली। सन् 1857 ई0 से 1859 ई0 तक देश को स्वतंत्र करने के हेतु जो संग्राम चला था उसके दब जाने के पश्चात् जो भी आन्दोलन उस पावन लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु खड़ा किया गया, उसमें मिथिला का सहयोग देश के अथवा प्रान्त के किसी भी भाग से किसी अंश में कम नहीं रहा, जिसका साक्ष्य इतिहास देता है।

बिहार प्रदेश के वाहवियों ने भी स्वतंत्रता–प्राप्ति के हेतु आन्दोलन किया था। इस्लाम धर्म की एक शाखा वाहवी सम्प्रदाय है। अरब के अब्दुल बाहिक के अनुयायियों को वाहवी कहा जाता है। वाहवी आन्दोलन के प्रवर्त्तक सैयद अहमद थे। उनका सिद्धान्त भारत वर्ष को विदेशियों की दासता से मुक्त करना था। क्योंकि इस सम्प्रदाय के अनुयायी भारतवर्ष पर अंग्रेजों के अधिपात्य को इस्लाम धर्म के विरूद्ध मानते थे। सन् 1828 ई0 से 1868 ई0 तक बिहार में वाहवी आन्दोलन का केन्द्र पटना में था। पीछे मुंगेर के सूरजगढ़ के मकसूद अली ने उक्त आन्दोलन का नेतृत्व अपने हाथ में लिया। अंग्रेजों ने उस धार्मिक आन्दोलन का भी बड़ी क्रूरता के साथ दमन किया। उस सम्प्रदाय के अनुयायी मिथिला में उस आन्दोलन को चला रहे थे। मो0 अहमदुल्लाह को 5 नवबर, 1864 ई0 को कड़ लिया गया। उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी तथा निम्न न्यायालय ने उन्हें फांसी की सजा दी। किन्तु उच्च न्यायालय ने काला पानी की सजा देकर उन्हें अंडमान भेज दिया, जहाँ उनकी तथा उनके भाई मो0 यहिया अली की मृत्यु 20 वर्षों के बाद हो गयी परन्तु इस प्रकार के दमन के बाद भी उस आन्दोलन को अंग्रेज सरकार समाप्त नहीं कर सकी। उनके शिष्यगण आन्दोलन को चलाते ही रहे, जिसमें अनेक मिथिला के निवासी थे।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता आन्दोलन, समाचार पत्र तथा राष्ट्रवाद के बीच स्पष्ट सम्बन्ध मौजूद है। वस्तुतः 1857 के विद्रोह के असफल हो जाने के बाद शिक्षित बुद्धिजीवियों में एक बेचैनी पैदा हो गयी। फलतः विभिन्न स्तरों पर स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए व्यापक पैमाने पर विचार तथा संगठन के जरिए स्वतंत्रता आन्दोलन की चेतना को नया आधार प्रदान किया गया। देश के कोने–कोने में उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के खिलाफ असंतोष की भावना परिव्याप्त थी। फलतः पूणर्जागरण आन्दोलन के चिन्तकों तथा समाज सुधार आन्दोलन से जुड़ें कार्यकर्त्ताओं ने अपने–अपने स्तरों पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तौर पर राष्ट्रवाद के विकास के लिए योगदान किया। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना मूलतः अभिजन वर्ग के द्वारा किया गया था। कांग्रेस के संगठन तथा उद्देश्य में उतार–चढ़ाव का दौर चलता रहा तथा अंततः यह स्वतंत्रता आन्दोलन का केन्द्रीय संगठन सिद्ध हुआ। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान विभिन्न चिन्तकों तथा नेताओं ने 1885 से 1947 के कालखण्ड में समाचार पत्रों का प्रकाशन किया। साथ ही इन नेताओं एवं चिन्तकों ने समय–समय पर समाचार पत्रों में समता, स्वतंत्रता, न्याय तथा भाईचारे के सम्बन्ध में लेखों एवं वैचारिक निबन्धों को प्रकाशन किया। इस प्रकार स्वतंत्रता आन्दोलन में समाचार पत्रों की भूमिका महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई।

संदर्भ

1. Stuchtey, Benedikt. Colonialism and Imperlalism, 1450-1950, European History online. Mainz : Institute of European History, 2011, retricred July 13, 2011, p. 142.
2. Desai, A. R. Social Background of Indian Nationalism Popular Prakashan Bombay, 1948, p. 233.
3. सरकार, सुमित, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृ. 452
4. द इंडियन नेशन, दरभंगा राज, पृ. 41
5. शर्मा, राम प्रकाश, मिथिला का इतिहास, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा पृ0–538.